विक्रम संवत-२०३५, अषाढ़ कृष्ण-१४, शनिवार, तारीख ९-८-१९८०
वचनामृत-१२, १५, १८, २० प्रवचन-२

यह वचनामृत है। रात्रि में बहनों में बोले होंगे, वह लिख लिया था। बाकी तो आत्मा की अनुभूति, आत्मा की अनुभूति में से वाणी निकली है। आनन्द का स्वाद में से। आहाहा! अनुभूति किसको कहे? आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे। आहाहा! स्वाद समझे? क्या कहते हैं? स्वाद कहते हैं? आहाहा! जैसे स्वाद-अनुभव में यह वाणी आ गयी है। वह यहाँ लिखकर बाहर आयी है। भाषा साधारण लगेगी। क्योंकि बहनों ने लिखा है। १२वाँ बोल, १२वाँ बोल।

जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई,... आहा..! मुद्दे की रकम की बात है। जिसे द्रव्य अर्थात् वस्तु। पर्याय के अतिरिक्त की त्रिकाली चीज़। क्योंकि पर्याय तो विषय करनेवाली है और विषय है, वह पर्याय नहीं। एक समय की जो पर्याय है-दृष्टि, सम्यग्दर्शन है, वह सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। पर्याय है न। पर्याय। सूक्ष्म बात है। सम्यग्दर्शन का विषय पूरा द्रव्य है। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अनन्त आनन्द और सर्वांग वीर्य-पुरुषार्थ से भरा पड़ा, ऐसा जो भगवान आत्मा, वह दृष्टि का (विषय है)। ऐसी **जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई,...** ऐसी जिसको द्रव्य अर्थात् वस्तु त्रिकाल। इसकी दृष्टि प्रगट हुई। सूक्ष्म बात है, भाई! मुद्दे की रकम तो यहाँ से शुरु होती है। द्रव्यदृष्टि बिना सब जानपना, आचरण, क्रिया सब संसार (है)। मूल चीज़ सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन का विषय ध्रुव है।

कहते हैं, **जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई,...** आहाहा! यह करना है। लोगों को पहले यह करना है। दृष्टि का विषय भगवान पूर्णानन्द का नाथ वीतरागमूर्ति आत्मा है। आत्मा में रागादि नहीं है। वह तो पर्याय में रागादि व्यवहारनय से है। अन्तर स्वरूप है, उसमें तो वीतरागता भरी है। पूर्ण वीतराग, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता—ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति का भण्डार है। उसकी दृष्टि हुई, **उसकी दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है।** आहाहा! जिसको अन्तर दृष्टि हुई, वह दृष्टि तल; तल अर्थात् तलवा,

पाताल। एक समय की पर्याय के अतिरिक्त जो तल है, वहाँ समकिती की दृष्टि लगी है। आहाहा! तल नाम तलवा। तल.. तल। पाताल। जैसे पाताल में गहराई में जाते हैं।

ऐसे आत्मा एक समय की पर्याय दृष्टि सम्यक्, उसका विषय पर्याय के अन्दर पाताल गहराई में द्रव्य पूरा पड़ा है, पर्याय के पीछे पड़ा है, उसकी दृष्टि करना। आहा..! वह **तल पर ही लगी है।** धर्मी की दृष्टि तल पर लगी है। पर्याय पर नहीं। आहाहा! कठिन काम है। **उसमें परिणति एकमेक हो गई है।** धर्मी समकिती की चौथे गुणस्थान में उसकी परिणति अर्थात् पर्याय, वस्तु की जो पर्याय है, वह पर्याय द्रव्य के सन्मुख हो गयी। उसमें एकमेक हो गयी, ऐसा कहने में आता है। एकमेक का अर्थ कि पर्याय जो राग पर झुकती थी, वह पर्याय स्वभाव की ओर आयी तो एकमेक हुई, ऐसा कहने में आता है। पर्याय और द्रव्य दोनों कभी एक नहीं होते। आहाहा! गजब बात है न! पर्याय-अवस्था पर्यायपने रहती है; ध्रुव ध्रुवपने रहता है। पर्याय-अवस्था ध्रुव के ऊपर तैरती है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! ... सम्यग्दर्शन। आहाहा!

उसकी दृष्टि तल में होती। समकित है पर्याय, परन्तु उसकी दृष्टि तल-ध्रुव पर है। इसलिए उसकी दृष्टि तल में गयी। ऊपर नहीं रही। ऊपर से निकल गयी। पर्यायबुद्धि भी निकल गयी। राग, पुण्य-पाप, दया-दान के विकल्प की बुद्धि निकल गयी। आहाहा! अन्दर तल, द्रव्यदृष्टि का तल जो है.. आहा..! लोक में तो पाताल का पता लगता है, यह पाताल दूसरी जाति का है। जिसके तल में क्षेत्र का अन्त दिखता है, भाव का अन्त नहीं है। वह क्या कहा? क्षेत्र तो शरीरप्रमाण है, परन्तु भाव अनन्त-अनन्त है। तीन काल के समय से भी अनन्त गुना आत्मा में गुण हैं। एक सेकेण्ड के असंख्य समय जाए। ऐसे तीन काल का जितना समय है, उससे अनन्तगुना एक जीव में गुण है। आहाहा! ऐसे तल पर (दृष्टि) गयी है। समकिती की दृष्टि की पर्याय (के) तल पर है। अनन्त गुण का एकरूप ऐसा द्रव्य पर गयी है। सूक्ष्म बात है, भाई!

उसमें परिणति एकमेक हो गई है। एकमेक अर्थ यह। पर्याय और द्रव्य, सामान्य और विशेष एक नहीं हो जाते। सम्यग्दर्शन विशेष है और द्रव्य सामान्य है। सामान्य और विशेष दो मिलकर द्रव्य है। परन्तु विशेष पर्याय, सन्मुख गयी, सन्मुख, तो एकमेक हुई ऐसा कहने में आता है। बाकी एकमेक होती नहीं। आहाहा! सूक्ष्म विषय है, प्रभु! एकमेक

(कहा परन्तु) पर्याय तो पर्याय है। पर्याय तो ध्रुव पर पर्याय है। वह पर्याय और ध्रुव कभी एक नहीं होते। क्योंकि पर्याय है, वह उत्पाद-व्ययस्वरूप है और द्रव्य है, वह ध्रुवस्वरूप है। ध्रुव में उत्पाद-व्यय का प्रवेश नहीं। आहाहा! और ध्रुव, उत्पाद-व्यय में आता नहीं। समझ में आता है? भगवान! यह तो भगवान की बातें हैं, बापू! आहाहा!

एक समय की पर्याय—दृष्टि द्रव्य पर लगी, उसको द्रव्य के साथ वह पर्याय एकमेक हो गयी, ऐसा कहने में आता है। ऐसा कहने में आता है; बाकी एकमेक होती नहीं। क्यों?—कि वस्तु सामान्य-विशेष है। प्रत्येक वस्तु सामान्य-विशेष (है), तो विशेष पर्याय, सामान्य में एकमेक हो जाए तो अकेला सामान्य रह जाता है, उसका जाननेवाला नहीं रहता। आहाहा! विशेष पर्याय है। ध्रुव सामान्य त्रिकाल है। तो विशेष-पर्याय द्रव्य की दृष्टि करती है, अपनी नहीं। सूक्ष्म बात है, प्रभु! अभी तो लोग क्रियाकाण्ड में लग गये हैं। तत्त्व तो कहीं दूर रह गया। आहाहा!

उसमें परिणति एकमेक हो गई है। चैतन्य-तल में ही सहज दृष्टि है। आहा..! धर्मी की.. सूक्ष्म पड़ेगा, प्रभु! अन्दर चैतन्यतल है, चैतन्यतल। एक समय की पर्याय के पीछे-अन्दर जो तल है, उस **चैतन्य-तल में ही सहज दृष्टि है।** उसमें स्वाभाविक दृष्टि है। दृष्टि हुई, बाद में फिर से दृष्टि करनी पड़ती है, ऐसा नहीं। दृष्टि वहाँ गई तो एकमेक (हो गयी)। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! उसमें **चैतन्य-तल में ही सहज दृष्टि है।**

स्वानुभूति के काल में... अब क्या कहते हैं? जब धर्मी को ध्याता, ध्यान और ध्येय तीन (भेद को) भूलकर एक अनुभव में जब आता है, तब उसे यह चैतन्य ध्रुव और यह पर्याय, ऐसी दो बात नहीं रहती। अनुभव में लीन हो जाता है। परन्तु बहुत थोड़ी देर के लिये। चौथे-पाँचवें में किसी-किसी समय। छट्ठे और सातवें में तो हजारों बार, अन्तर्मुहूर्त में छट्ठे-सातवें में हजारों बार निर्विकल्प (हो जाते हैं)। एक अन्तर्मुहूर्त में। अन्तर की दशा की बात है, भगवान! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **स्वानुभूति के काल में...** क्या कहा? ध्यान के काल में दृष्टि का विषय जो द्रव्य-वस्तु है, उसके ध्यान में जब लग गया, तब पर्याय से लक्ष्य छूट गया और पर्याय द्रव्य पर झुक गयी, उस काल में भी दृष्टि तो तल पर ही है। स्वानुभूति में भी दृष्टि

तो द्रव्य पर ही है और **या बाहर उपयोग हो, तब भी...** क्या कहा ? विकल्प आया है। शुभाशुभ विकल्प भी आता है। शुभ और अशुभराग समकिती को आता है, तो भी उसकी दृष्टि चैतन्य पर है, दृष्टि द्रव्य पर है।

मुमुक्षु :- ....

पूज्य गुरुदेवश्री :- द्रव्य पर दृष्टि है। विकल्प चाहे तो शुभाशुभ हो, परन्तु दृष्टि में तो भगवान ध्रुव ही वर्तता है। दृष्टि में विकल्प नहीं है। दृष्टि का विषय विकल्प नहीं। आहा.. ! विकल्प अर्थात् राग। आहाहा ! श्लोक यह आ गया। किसी ने पत्र लिखा है, यह पढ़ना। किसी ने लिखा है कि यह पढ़ना। चिमनभाई ने लिखा है ? किसने लिखा है ? आया है। इसमें से यह बोल पढ़ना। किसी का नाम नहीं है। क्या कहते हैं ? प्रभु !

जिसकी दृष्टि प्रभु पर गयी.. आहाहा ! उसको अनुभव काल में भी दृष्टि वहाँ है और अनुभव न हो और विकल्प आया, खाने-पीने का, चलने-बोलने का, अरे.. ! लड़ाई का (विकल्प आया)। बाहुबली और भरत चक्रवर्ती, दोनों समकिती। दोनों लड़ाई करते थे। आहाहा ! तो भी दृष्टि ध्रुव पर थी। अरे.. ! प्रभु ! आहाहा ! दोनों लड़ाई करते थे, दोनों समकिती। दोनों उस भव में मोक्ष जानेवाले। आहाहा ! लड़ाई के समय राग-द्वेष आता था, परन्तु दृष्टि तो ध्रुव पर थी। त्रिकाली भगवान सच्चिदानन्द प्रभु सत् नित्य रहनेवाला चिदानन्द ज्ञान और आनन्द का सर्वांग सागर, सर्वांग समुद्र। ऐसा जो प्रभु आत्मा, लड़ाई के समय भी ध्येय-दृष्टि द्रव्य पर से नहीं हटती। आहाहा ! समझ में आता है ? आहाहा ! यह तो मुद्दे की बात है। दृष्टि, चाहे तो अनुभव में हो तो भी दृष्टि ध्रुव पर है। अपने ध्यान में, ध्याता-ध्यान का (विकल्प) छूटकर आनन्द के स्वाद में आया हो और निर्विकल्प हो, चौथे गुणस्थान में भी निर्विकल्प होता है, तब निर्विकल्पता के काल में दृष्टि तो ध्रुव पर है। पर्याय में निर्विकल्प हुआ; और विकल्प आया तो भी दृष्टि तो ध्रुव पर है। विकल्प आया, अरे.. ! लड़ाई का आया। भरत चक्रवर्ती समकिती, ९६ हजार स्त्री का भोग। ९६ हजार... फिर भी दृष्टि ध्रुव पर थी।

मुमुक्षु :- दृष्टि माने...

पूज्य गुरुदेवश्री :- सम्यग्दृष्टि।

मुमुक्षु :- दृष्टि अर्थात् चक्षु ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- चक्षु बिना का। समकितरूपी चक्षु। पहले तो वह कहा था। दृष्टि, द्रव्य को स्वीकार करे, वह दृष्टि। यह आँख में क्या है ? धूल है। यह आँख की पलक झपकती है, उसे आत्मा नहीं कर सकता। आहा..! आत्मा अपने अतिरिक्त अनन्त रजकण है, एक रजकण को भी बदल नहीं सकता। शास्त्र में तो वहाँ तक पाठ है, समयसार में तीसरी गाथा। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को चूमता नहीं, स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं। समयसार, तीसरी गाथा। **एयत्तणिच्छयगदो।**

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि॥३॥

इस गाथा की टीका में अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि कोई भी आत्मा, कोई भी परमाणु को कभी छूता नहीं। कर्म आत्मा को (छूता नहीं)। आहाहा! आत्मा को कर्म छूता नहीं और कर्म को आत्मा छूता नहीं। अरे..रे..! यह बात। वस्तु का स्वरूप यह है। बाकी तो सब व्यवहार की बात है, परमार्थ यह है। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को (छूता नहीं)। यह अँगुली है, वह कागज को छूती है, ऐसा नहीं। क्योंकि उसके परमाणु का और इस परमाणु में एक-दूसरे में अभाव है। आहाहा! सूक्ष्म बात, प्रभु! उसमें यहाँ कहते हैं कि उपयोग जब स्वानुभूति में हो। समकिती का उपयोग ध्यान में आनन्द के वेदन में अकेला हो, बस। विकल्प नहीं है, निर्विकल्प (है)। उस काल में भी दृष्टि ध्रुव पर है और विकल्प आया, खाने का-पीने का, चलने का, तो भी दृष्टि तो ध्रुव पर है। लड़ाई का विकल्प आया तो भी दृष्टि ध्रुव पर है। श्रेणिक राजा कैद में सिर फोड़कर मर गया। दृष्टि ध्रुव पर है। समझ में आया ? अन्दर सम्यग्दर्शन का विषय ध्रुव को पकड़ लिया है। आहाहा!

सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह कोई कहानी नहीं है। यह तो परमात्मा तीन लोक के नाथ ने कहा है। बहिन वहाँ थी। सीमन्धर भगवान के पास थी, वहाँ से आयी हैं। थोड़ी सूक्ष्म बात है। थोड़ी माया हो गयी थी, इसलिए स्त्री हो गये। यह सब उनके वचन हैं। अन्दर से आया हुआ। वहाँ का अन्दर अनुभव में आया था, वह लिख लिया गया है। क्या कहा ?

स्वानुभूति के काल में... स्वानुभूति के काल में समझे ? ध्यान। आत्मा का ध्यान

लग गया हो। भले चौथे-पाँचवें में हो। सातवें में तो होता ही है। छट्ठे से सातवें में तो ध्यान में ही होते हैं। परन्तु चौथे-पाँचवें में भी कभी-कभी स्वानुभव निर्विकल्प उपयोग होता है। उस काल में भी दृष्टि तो ध्रुव पर है, सम्यग्दर्शन तो ध्रुव पर है। और **बाहर उपयोग हो, तब भी तल पर से दृष्टि नहीं हटती,...** आहाहा! दृष्टि का विषय ध्रुव है, ध्रुव। कठिन बात है। **भूदत्थमस्सिदो खलु।** ११वीं गाथा, समयसार। भूतार्थ अर्थात् त्रिकाल जो चीज़ है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। दूसरा कोई उपाय तीन काल में नहीं है। आहाहा! **भूदत्थमस्सिदो** भूतार्थ अर्थात् त्रिकाली का आश्रय करने से, **भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।** तब से समकित दृष्टि उत्पन्न होती है। आहाहा! मूल चीज़ यह है। तब से दृष्टि जो ध्रुव पर गयी, बाहर में विकल्प आये तो भी दृष्टि तो ध्रुव पर ही है। आहाहा!

एक छोटी लड़की हो या लड़का हो। उसकी माँ के साथ हो और बाहर बहुत लोग हो। उसकी माँ दूर चली गयी। लड़की बिछड़ गयी। यह तो प्रत्यक्ष देखा था। उस लड़की को पूछते थे, तू कहाँ की है? मेरी माँ। तेरा नाम क्या? मेरी माँ। मेरी माँ.. मेरी माँ.. एक ही रटन। तेरी सहेली कौन? मेरी माँ। तेरी गली कौन-सी? पहचान दे तो वहाँ छोड़ दे। तेरी गली कौन-सी? मेरी माँ। एक ही बात, मेरी माँ.. मेरी माँ। इसके सिवा दूसरा कुछ नहीं।

ऐसे समकिती को अपने सम्यग्दर्शन में ध्रुव के सिवा दृष्टि कहीं बदलती नहीं। समझ में आया? आहाहा! **स्वानुभूति के काल में या बाहर उपयोग हो, तब भी तल पर से दृष्टि नहीं हटती,...** तल अर्थात् ध्रुव। उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्। उत्पाद-व्यय है, वह पर्याय है; ध्रुव है, वह द्रव्य है। द्रव्य के दो प्रकार। एक प्रमाण का द्रव्य। त्रिकाली द्रव्य और पर्याय मिलकर प्रमाण का द्रव्य है और निश्चयनय का द्रव्य, पर्याय को छोड़कर जो चीज़ रही, वह निश्चयनय का विषय है। सूक्ष्म बात है, भाई! क्या कहा? फिर से।

एक समय की पर्याय है, उसकी दृष्टि द्रव्य पर ही है। पर्याय की दृष्टि पर्याय पर नहीं है। समकित दृष्टि समकित पर नहीं है। आहाहा! उसकी दृष्टि अन्दर ध्रुव पर है। बापू! कभी प्रयत्न किया नहीं। बाह्य क्रियाकाण्ड की प्रवृत्ति के कारण फुरसत नहीं मिलती। आहाहा! यह भगवान अन्दर निर्विकल्प भगवान विराजता है। उस पर जो दृष्टि हुई, उसका विकल्प बाहर आवे तो भी दृष्टि हटती नहीं। आहाहा!

अरे.. ! भरत चक्रवर्ती ! ९६ हजार स्त्री का भोग। ९६ हजार स्त्री का भोग, फिर भी समकिती / क्षायिक समकिती। आहाहा ! भोग के समय भी दृष्टि ध्रुव पर है। चाहे संसार के भोगादि हो, अस्थिरता हो जाए, परन्तु दृष्टि तो अन्दर ध्रुव पर पड़ी है। समझ में आया ? विषय थोड़ा सूक्ष्म है। सादी भाषा में तो कहते हैं। आहा.. ! दुनिया को कहाँ आत्मा की पड़ी है। मैं कहाँ जाऊँगा, यह देह छोड़कर ? देह तो छूटेगा, आत्मा तो नित्य है। यहाँ से कहाँ जाएगा ? कहाँ जाएगा इस चौरासी के अवतार में ? आहा.. ! कभी उसने विचार नहीं किया है कि यह देह तो छूटेगा और आत्मा तो है। आत्मा तो त्रिकाल है। यहाँ से कोई दूसरे भव में तो जाएगा। इस भव के तो थोड़े वर्ष रहे। ५०-५०, ६० निकल गये, उसे ५०-६० और नहीं निकलेंगे। पण्डितजी ! ५० निकलेंगे ? आहाहा ! यहाँ से परलोक में कहीं जाना है। जहाँ कोई साधन नहीं है, बाहर में कोई पहचानवाला नहीं है।

मुमुक्षु :- वहाँ कोई रिश्तेदार नहीं है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- वहाँ कोई रिश्तेदार भी नहीं है और प्रिय भी नहीं है। जंगल में शूकर होकर जन्म ले। कौआ होकर जन्म ले, चींटी होकर अवतार ले। आहाहा ! प्रभु ! तूने विचार नहीं किया। आहा.. ! पिछले अनन्त भव में कहाँ-कहाँ भव में दुःख भोगे, उसे याद नहीं किया है। वादिराज मुनि... ये स्तोत्र है न ? एकीभाव स्तोत्र। उसमें आचार्य कहते हैं, मैं पिछले भव के दुःखों को याद करता हूँ... ये तो मुनि हैं, तीन कषाय का अभाव है, आनन्द है। परन्तु कहते हैं कि मैं जब भूतकाल का विचार करता हूँ, नरक के दुःख याद करने पर आत्मा में घाव लगता है। ऐसा पाठ है। समझ में आया ? मुनि, हों ! तीन कषाय का अभाव है, भावलिंगी, जिनको गणधर नमस्कार करे। मुनि को तो गणधर (नमस्कार करते हैं)। णमो लोए सव्व साहूणं में सब आ जाते हैं न ? छोटे हो, उसको वन्दन नहीं करते, परन्तु णमो लोए सव्व साहूणं में सब आ जाते हैं। सब साधु। सच्चे, हों ! साधु अर्थात् द्रव्यलिंगी भी नहीं और अन्य के साधु भी नहीं। कोई ऐसा कहता है कि णमो लोए सव्व साहूणं में सब साधु (आ जाते हैं)। नहीं, नहीं। जैन परमेश्वर ने कहे हुए तत्त्व का अनुभव, दृष्टि हो, उन्होंने कहा ऐसे अनुभव का चारित्र हो, उसे जैन साधु कहने में आता है। बाकी कोई साधु-बाधु है नहीं।

यहाँ कहते हैं, **दृष्टि बाहर जाती ही नहीं।** आहाहा ! भोग के समय भी दृष्टि तो ध्रुव

पर पड़ी है। यह कोई बात है! एक बात तो ऐसी है। भरतेश वैभव पुस्तक है न? देखा है या नहीं? भरतेश वैभव। यहाँ सब पुस्तक है, हमने तो सब देखे हैं। यहाँ तो हजारों पुस्तक देखे हैं न। भरतेश वैभव में तो एक बात ऐसी आयी है कि उसने विषय लिया। विषय लेकर जहाँ नीचे उतरकर बैठते हैं, निर्विकल्प ध्यान हो जाता है। क्योंकि दृष्टि ध्रुव पर थी और अस्थिरता का राग आया था। उसे वे जानते थे, कर्ता-हर्ता नहीं थे। समकिती को राग आता है, उसका वह कर्ता-हर्ता नहीं है। और वह आने के बाद तुरन्त ध्यान में उतर गये तो निर्विकल्प हो गये। चौथे गुणस्थान में अभी संसार में (ऐसी स्थिति है)। भरतेश वैभव में है।

यहाँ कहना क्या है? कि उतनी अस्थिरता थी तो भी नीचे उतरे और ध्यान में निर्विकल्प हो गये। ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों भूल गये। अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद (लेते हैं)। आहा..! उसका नाम सम्यग्दर्शन और उसका नाम धर्म की शुरुआत है। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! लोग चाहे जैसे करे, मनाये, परन्तु इस वस्तु के बिना कभी भवभ्रमण कम हो, ऐसा नहीं है। भव का नाश हो, ऐसा नहीं है। आहा..!

दृष्टि बाहर जाती ही नहीं। ज्ञानी चैतन्य के पाताल में पहुँच गये हैं;... धर्मी जीव चैतन्य के पाताल में (पहुँच गये हैं)। एक समय की पर्याय के पीछे गहराई में जो ध्रुव है, वह चैतन्य का पाताल है। धर्मी जीव अपनी पर्याय में चैतन्यतल में-पाताल में पहुँच गये हैं। चैतन्यतल पूरा कितना है, उसका उसको वेदन हो गया है। आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म है। यह शब्द सूक्ष्म है। **गहरी-गहरी गुफा में,...** आहाहा! जैसे गहरी-गहरी गुफा होती है, वैसे आत्मा अपनी पर्याय में, सम्यग्दृष्टि की पर्याय में गहरी-गहरी अर्थात् जैसे कोई गहरी गुफा हो, वैसे अन्दर में चले जाते हैं। ध्रुव में उसकी दृष्टि जाती है। ध्रुव के अतिरिक्त दूसरी चीज़ का ध्यान (नहीं) होता। दृष्टि के विषय में तो एक ही रहता है-द्रव्य। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा.. आहाहा!

गहरी-गहरी गुफा में, बहुत गहराई तक पहुँच गये हैं;... आहाहा! सम्यग्दृष्टि, सच्ची दृष्टि, अनुभव दृष्टि गहराई में, एकदम गहरे-गहरे गहराई में। पर्याय के पीछे जो स्वयं परमात्मा विराजता है-निज आत्मा, वहाँ दृष्टि पहुँच गयी है। आहाहा! ये तो बहन बोली

थी। कभी-कभी थोड़ा-थोड़ा बोले थे, उसे लिख लिया। नहीं तो वह ध्यान में बहुत रहती है। आहाहा! **गहरी-गहरी गुफा में, बहुत गहराई तक पहुँच गये हैं;...** बहुत गहराई में अन्दर चले गये हैं। अपनी वर्तमान पर्याय को ध्रुव में लगा दी। आहाहा! पर्याय असंख्य प्रदेश पर है। पर्याय ऊपर-ऊपर अर्थात् शरीर तो नहीं, परन्तु ऊपर-ऊपर प्रदेश पर पर्याय ऐसे नहीं, पर्याय तो अन्दर जो प्रदेश है न, अन्दर, उसमें पर्याय है। पर्याय असंख्य प्रदेश पर प्रत्येक (प्रदेश) पर है। क्या कहा? पर्याय, इस शरीर में आत्मा जितने में दिखता है, उसमें ऊपर-ऊपर है, उतनी आत्मा की पर्याय नहीं है। आत्मा नहीं, लेकिन आत्मा के ऊपर है, उतनी पर्याय नहीं है। उसके असंख्य प्रदेश है, उस प्रदेश का जो दल है, वहाँ प्रदेश-प्रदेश पर पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? प्रदेश-प्रदेश पर पर्याय, असंख्य प्रदेश में घुस जाती है, अन्दर एकाकार (हो जाती है), तब उसको विकल्प नहीं रहता। विकल्प आता है, तब उसको जानते हैं, कर्ता नहीं होते। समझ में आया?

साधना की सहज दशा साधी हुई है। धर्मी ने तो साधना की सहज दशा (साधी है)। साधन यह है। अन्तर्मुख आनन्द में झुकाव, वह साधना। बाकी बाहर की क्रियाकाण्ड को साधना कहे, बापू! उसमें कुछ नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो साधना की सहज स्वभाविक दशा साधना की यह है। आहाहा! अन्तर गुफा में अन्दर अपनी पर्याय से उतरना, वह साधना की दशा है। अरे.. प्रभु! मार्ग वीतराग का.. आहाहा! अनन्त तीर्थंकर यह कह गये हैं। १५वाँ लिखा है।

तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि जो कि जड़ है, उसे भी कैसी उपमा दी है! अमृतवाणी की मिठास देखकर द्राक्षें शरमाकर वनवास में चली गईं और इक्षु अभिमान छोड़कर कोल्हू में पिल गया! ऐसी तो जिनेन्द्रवाणी की महिमा गायी है; फिर जिनेन्द्रदेव के चैतन्य की महिमा का तो क्या कहना!॥ १५॥

तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि जो कि जड़ है,... १५वाँ बोल। **तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि जो कि जड़ है, उसे भी कैसी उपमा दी है! अमृतवाणी की मिठास...** प्रभु! आपकी वाणी की मिठास **देखकर द्राक्षें शरमाकर वनवास में चली गईं...** द्राक्ष.. द्राक्ष। द्राक्ष की मिठास, तेरी वाणी की मिठास सुनकर द्राक्ष वन में चली गई। तेरी मिठास वीतराग

की वाणी। सिंह और बाघ जंगल में से काले नाग प्रवचन में आते हैं। जैसे ही सुनते हैं, स्थिर हो जाते हैं। सर्प के साथ चूहा बैठा हो। चूहे को भय नहीं है और यह उसे मारे नहीं। बिल्ली का बच्चा (बैठा हो)। वर्तमान भगवान समवसरण में (विराजते हैं)।

यहाँ कहते हैं कि **तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि जो कि जड़ है, उसे भी कैसी उपमा दी है! अमृतवाणी की मिठास देखकर द्राक्षें शरमाकर वनवास में चली गईं...** आहा..! उपमा दी है। द्राक्ष की मिठास, भगवान की वाणी की मिठास के आगे शरमा गई। वन में चली गई। ऐसी बात है। अमृत झरता है। आता है न? भगवान की वाणी में अमृत झरता है, अमृत झरता है। है तो वाणी। वाणी के कर्ता नहीं है। भगवान वाणी के कर्ता नहीं है। वाणी जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय को आत्मा करता नहीं। परन्तु वाणी में इतनी ताकत है कि जग को मिठास उत्पन्न हो और स्वपरप्रकाशक प्रसिद्ध करे, स्वपरप्रकाशक प्रसिद्ध करे। आहाहा! वाणी में उतनी ताकत है। तो फिर प्रभु की चैतन्य की ताकत की क्या बात करनी!!

इक्षु अभिमान छोड़कर... ईक्षु अर्थात् गन्ना। गन्ना-शेरडी। वह **कोल्हू में पिल गया!** भगवान की वाणी की मिठास देखकर... यह तो उपमा दी है। इक्षु पिल गया। किसमें? कोल्हू में। कोल्हू में पिल गया। भगवान की मिठास के आगे शरम आ गई, ऐसा कहते हैं। आहा...! **ऐसी तो जिनेन्द्रवाणी की महिमा गायी है; फिर जिनेन्द्रदेव के चैतन्य की महिमा का तो क्या कहना!** आहाहा! वाणी में इतनी मिठास कि द्राक्षें (वनवास में चली गई)। गन्ना कोल्हू में पिल गया। प्रभु के आत्मा की क्या बात करनी! आहाहा! १८। किसी ने लिखकर रखा है।

दृष्टि द्रव्य पर रखना है। विकल्प आयें परन्तु दृष्टि एक द्रव्य पर है। जिस प्रकार पतंग आकाश में उड़ती है परन्तु डोर हाथ में होती है, उसी प्रकार 'चैतन्य हूँ' यह डोर हाथ में रखना। विकल्प आयें, परन्तु चैतन्यतत्त्व, सो मैं हूँ — ऐसा बारम्बार अभ्यास करने से दृढ़ता होती है॥ १८॥

१८ वाँ बोल। **दृष्टि द्रव्य पर रखना है।** है? धर्मी को,... धर्म किसको होता है? - कि जिसकी दृष्टि द्रव्य पर पड़ी है। आहाहा!

मुमुक्षु :- दृष्टि अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहा न। प्रतीत, मान्यता। अनुभव में यह वस्तु यही है, ऐसी प्रतीति, उसका नाम सम्यग्दृष्टि। सम्यग्दर्शन की बात चलती है। आहाहा! वह बात कठिन है, बापू! सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान भी झूठा और उसके बिना क्रिया-ब्रिया चारित्र नहीं है। चारित्र है नहीं, सम्यग्दर्शन के बिना। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, कौन-सा है ? १८। **दृष्टि द्रव्य पर रखना है। विकल्प आयें...** राग आये शुभ-अशुभ दोनों, समकिती को-ज्ञानी को। परन्तु आत्मा के आनन्द के स्वाद के आगे उस शुभ-अशुभराग की मिठास आती नहीं। स्वामी होता नहीं, कर्ता होता नहीं। क्या कहा ? समकिती गृहस्थाश्रम में हो, भोग हो, लड़ाई हो, परन्तु दृष्टि अन्तर पड़ी है, वह स्वाद को भूलता नहीं। उस समय भी आनन्द का स्वाद आनन्द है, उसका अनुभव है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! जब से सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, तब से आनन्द की धारा तो रहती ही है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द, हों! जीव में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है।

दृष्टि द्रव्य पर रखना है। विकल्प आयें परन्तु दृष्टि एक द्रव्य पर है। जिस प्रकार पतंग आकाश में उड़ती है... पतंग आकाश में (उड़ती है)। **परन्तु डोर हाथ में होती है,...** डोर हाथ में है। ऐसे समकिती को चाहे जितने भी विकल्प आये, परन्तु डोर हाथ में ध्रुव है। दृष्टि में ध्रुव पड़ा है। आहाहा! समझ में आया ? पतंग होती है न, पतंग ? पतंग उड़ती है, कहीं भी चली जाए। डोर हाथ में है। आहाहा! वैसे समकिती राग-द्वेष आदि में आता है, परन्तु डोर हाथ में है-ध्रुव हाथ में है। ध्रुव में से दृष्टि हटती नहीं। आहाहा! यह मुद्दे की बात है, प्रभु! ये तो बहिन रात को बोले थे, बहिनों ने लिख लिया था, इसलिए बाहर आ गया। नहीं तो आये नहीं। नहीं आये है ? नहीं आये हैं।

पतंग आकाश में उड़ती है परन्तु डोर हाथ में होती है, उसी प्रकार 'चैतन्य हूँ' यह डोर हाथ में रखना। आहाहा! मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ। ज्ञान और दर्शन से भरा पड़ा धोकड़ा... धोकड़ा को क्या कहते हैं ? रुई का बोरा। बड़ा बोरा। वैसे मैं तो अनन्त आनन्द का बड़ा बोरा हूँ। आहा..! अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। शक्रेन्द्र के इन्द्र के सुख जहर है। आत्मा का सुख अमृत है। आहाहा! राजा, महाराजा और करोड़पति, अरबोंपति सब दुःखी है। राग के कारण दुःखी है, अल्प भी सुखी नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु :- पैसा है, उतना तो सुखी है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- दु:खी (है)। पैसा परिग्रह है। वह परिग्रह मेरा, वह मिथ्यात्व है। अभी हम आफ्रीका में गये थे न? आफ्रीका में गये थे न। २६ दिन रहे थे। गाँव में ६० लाख की बस्ती है। एक लाख मोटर, ४५० करोड़पति, ४५० करोड़पति और १५ अरबपति। सब सुनने आते थे। सुनते थे। हमें क्या? उनका बहुत आग्रह था और यहाँ के परिचित थे। २५ लाख का मन्दिर बनानेवाले हैं। २५ लाख का मन्दिर, दिगम्बर मन्दिर। भगवान के बाद नहीं हुआ है। ६० लाख इकट्ठे हुए। पैसे तो वहाँ बहुत आते हैं। परन्तु उसे कहा, तुम ६० लाख या २५ लाख खर्च करो, इसलिए धर्म हो जाए, ऐसा है नहीं। आहाहा! और वह क्रिया भी आत्मा कर सके, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? क्रिया कर सके नहीं, परन्तु क्रिया में जो भाव है, वह शुभ है, धर्म नहीं है। करोड़ रुपया, पाँच करोड़ मन्दिर में खर्च किये, इसलिए धर्म हो गया, बिल्कुल धर्म नहीं है, थोड़ा-सा भी नहीं है। शुभभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु :- वह सब आपका प्रताप था।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह वस्तु तो भगवान के घर की है। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार गजब बातें हैं! संस्कार वहाँ के थे, वहाँ के संस्कार थे। आहा..

विकल्प आयें, परन्तु चैतन्यतत्त्व सो मैं हूँ — ऐसा बारम्बार अभ्यास करने से दृढ़ता होती है। १८ वाँ बोल। बारम्बार अभ्यास करने से दृढ़ता होती है। आहाहा! १९वाँ लेते हैं। १९।

ज्ञानी के अभिप्राय में राग है, वह जहर है, काला साँप है। अभी आसक्ति के कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं, राग है, परन्तु अभिप्राय में काला साँप लगता है। ज्ञानी विभाव के बीच खड़े होने पर भी विभाव से पृथक् हैं- न्यारे हैं॥ १९॥

ज्ञानी के अभिप्राय में राग है वह जहर है, काला साँप है। धर्मी समकितदृष्टि को आत्मा के आनन्द के स्वाद के समक्ष जो राग आता है, वह काला साँप लगता है, जहर है। दुनिया को कहाँ पड़ी है और कहाँ भटकती है, कुछ मालूम ही नहीं। कमाना और दो-

पाँच-पचास लाख कमा लिया तो हो गया, मानो.. ओहोहो! आत्मा यहाँ से देह छोड़कर कहाँ जाएगा? कोई साथ में है या नहीं? दरकार ही कहाँ है? व्यापार, धन्धा, स्त्री, पुत्र। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, वह यहाँ कहा।

ज्ञानी के अभिप्राय में राग है, वह जहर है,... आहाहा! शुभराग है न। आत्मा आनन्द है न! आत्मा आनन्द है न! तो आनन्द से विपरीत अवस्था राग है और राग जहर है। आहा..! कठिन बात है, भाई! शुभराग करते-करते होगा, ऐसा माननेवाले की दृष्टि में मिथ्यात्व है। शुभराग दुःख है। दुःख करते-करते समकित अर्थात् सुख होगा? समकित अर्थात् सुख-अतीन्द्रिय आनन्द और शुभराग अर्थात् दुःख। सूक्ष्म बात तो है, प्रभु! दुःख करते-करते सुख की प्राप्ति होगी, जहर पीते-पीते अमृत की डकार आयेगी? आहाहा! ऐसा होता नहीं। अज्ञानी मानता है कि शुभक्रिया करते-करते आगे बढ़ जाएँगे। जब तक मिथ्यादृष्टि है, तब तक जितने भी शुभभाव हो, नौवीं ग्रैवेयक चला जाए, वहाँ से भी नीचे गिरता है। नौवीं ग्रैवेयक। ग्रीवा.. ग्रीवा। चौदह ब्रह्माण्ड पुरुषाकार है। उसकी जो ग्रीवा है, उस ग्रीवा के स्थान में नौ पासड़ा है। वहाँ अनन्त बार जन्म लिया। शुक्ललेश्या, दिगम्बर साधु वस्त्र के टुकड़े से रहित, ४६ दोषरहित आहार, ऐसी क्रिया करोड़ों पूर्व की, परन्तु वह समकित नहीं है। आहाहा! आतमज्ञान बिना... छहढाला में कहा नहीं? 'मुनिव्रत धार अनंत बार ग्रैवेयक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' पंच महाव्रत के परिणाम दुःख है, आस्रव है। कड़क लगेगा, भाई! नये आदमी ने कभी सुना नहीं हो, क्या चीज़ है, क्या मार्ग है। ऐसे ही अन्ध होकर (चलते हैं)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अभी आसक्ति के कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं,...** धर्मी को अस्थिरता की आसक्ति रहती है, चारित्रदोष है, तो दोष के कारण थोड़े बाहर आते हैं। परन्तु जानते हैं कि वह दुःखरूप है, वह मेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! **परन्तु अभिप्राय में काला साँप लगता है।** है? शुभाशुभभाव आवे, **परन्तु अभिप्राय में काला साँप लगता है। ज्ञानी विभाव के बीच खड़े होने पर भी...** आहाहा! अपना निज स्वरूप भगवान परमानन्द की मूर्ति सर्वांग आनन्द, उसकी अनुभव की दृष्टि हुई तो वह विभाव अर्थात् विकार के बीच में हो तो भी उसे आनन्द छूटता नहीं। विभाव है, उतना दुःख होता है। पहले नरक में अभी श्रेणिक राजा है। ८४ हजार वर्ष की स्थिति है। तीर्थंकर गोत्र बाँधते हैं, अभी बाँधते हैं, वहाँ

भी बाँधते हैं। क्षायिक समकित है और बाँधते हैं। परन्तु अभी जितनी कषाय है, उतना दु:ख है। संयोग का (दु:ख) नहीं। वहाँ अग्नि आदि का संयोग है, उस संयोग को छूते नहीं। उस पर दृष्टि जाती है कि यह.. उसका वेदन है। कषाय का वेदन है, वेदन परसंयोग का नहीं है। आहाहा! नरक के दु:ख का वर्णन करते तब (ऐसा कहे), परमाधामी ऐसा करे, वैसा करे। परन्तु एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। करे क्या? अभिमान करे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! **ज्ञानी विभाव के बीच खड़े होने पर भी विभाव से पृथक् हैं...** आहाहा! माता पर नजर और स्त्री पर नजर जाए, उसमें अन्तर है। माता पर नज जाती है तो, मेरी माँ है। वह स्त्री है। उस प्रकार समकिती की नजर आत्मा पर है। मिथ्यादृष्टि की नजर पर्याय एवं राग पर है। आहाहा! बहुत अन्तर। क्या करना? एक ओर धन्धा करके... आहाहा! वह पन्द्रह अरबवाला हुआ। कितने लाख? एक साल में कितने लाख? आहा..! पन्द्रह अरब किसे कहे? धूल है, मैंने तो कहा, दु:खी है। उसमें सुख नहीं है। जब तक आत्मज्ञान नहीं हो, तब तक तुम दु:खी हो। आहाहा! पण्डितजी ने ऐसा लिखा है, हुकमचन्दजी ने, पैसा आता है पुण्य से, परन्तु पैसा पाप है। परिग्रह है। आहाहा! दसलक्षण में आया है। पैसा है पूर्व पुण्य के कारण, पूर्व पुण्य के कारण मिले। परन्तु मिला है, वह पाप है। पैसेवाला पापी है।

मुमुक्षु :- पैसे के बिना काम नहीं चलता।

पूज्य गुरुदेवश्री :- एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अभाव है। एक आत्मा लो। अपने में अस्ति है और अनन्त-अनन्त पदार्थ की उसमें नास्ति है। अनन्त की नास्तिरूप भी अस्ति है। पर को तो छूता भी नहीं। आहाहा! यह अंगुली इस अंगुली को छूती नहीं। अन्दर फर्क है, दोनों के बीच अभाव है। मार्ग सूक्ष्म है, भाई! आहा..!

मुमुक्षु :- नया मार्ग है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- खरा मार्ग यह है।

मुमुक्षु :- नहीं, नहीं; नया... नया मार्ग है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नया नहीं है, अनादि का यह मार्ग है। २०वाँ।

मुझे कुछ नहीं चाहिए, किसी परपदार्थ की लालसा नहीं है, आत्मा ही चाहिए — ऐसी तीव्र उत्सुकता जिसे हो, उसे मार्ग मिलता ही है। अन्तर में चैतन्यऋद्धि है, तत्सम्बन्धी विकल्प में भी वह नहीं रुकता। ऐसा निस्पृह हो जाता है कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिए। — ऐसी अन्तर में जाने की तीव्र उत्सुकता जागे तो आत्मा प्रगट हो, प्राप्त हो॥ २०॥

मुझे कुछ नहीं चाहिए,... मुझे आत्मा चाहिए, ऐसी लगन-लगन लगनी चाहिए। मुझे कुछ नहीं चाहिए। एक आत्मा मेरी चीज़ चाहिए। है न? २०वाँ। **किसी परपदार्थ की लालसा नहीं है, आत्मा ही चाहिए...** आहाहा! अन्तर लगनी लगे। आत्मा ही चाहिए, **ऐसी तीव्र उत्सुकता जिसे हो, उसे मार्ग मिलता ही है।** उसे मार्ग मिलता है। विशेष २१ में आयेगा... आज पूरा हो गया। **अन्तर में चैतन्यऋद्धि है तत्सम्बन्धी विकल्प में भी वह नहीं रुकता।** अपने में आनन्दादि ऋद्धि है, उसमें विकल्प करे कि मेरे में आनन्द है, ऐसे विकल्प में नहीं रुकता। विकल्प है, वह राग है, जहर है। भगवान निर्विकल्प अमृत का घर है। आहाहा!

ऐसा निस्पृह हो जाता है कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिए। है? धर्मी तो ऐसा निस्पृह हो जाता है (कि) अपना अस्तित्व, अपनी मौजूदगी चीज़ जो है, अनादि-अनन्त निरावरण, सकल निरावरण अनादि-अनन्त प्रभु अन्दर है, वह चाहिए। उसके सिवा कुछ नहीं चाहिए। त्रिकाल निरावरण है। द्रव्य है, वह त्रिकाल निरावरण है। आवरण तो पर्याय में निमित्त है। द्रव्य तो त्रिकाल निरावरण है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :-** प्रमाण वचन गुरुदेव!)